वृत्ति का विकास हुआ उसका बहुत कुछ श्रेय जैनाचार्यों को भी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

मुगल सम्राटों की धार्मिक नीति, कु० नीना जैन, काशीनाथ सराफ, विजयधर्म सूरि, समाधि मन्दिर, शिवपुरी, १९९१.

मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, अगरचन्द नाहटा व भँवर लाल नाहटा, मणिधारी जिनचन्द्र सूरि अष्टम शताब्दी समारोह समिति, दिल्ली, सन् १९७१.

अकबर दी ग्रेट, वि०ए० स्मिथ, ऑक्सफोर्ड ऐट दी क्लेरण्डन प्रेस, १९१९.

दी रिलीजियस पॉलिसी ऑफ़ दी मुग़ल एम्परर्स, श्री राम शर्मा, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९६२.

दी मुग़ल एम्पायर, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा, १९६७.

सूरीश्वर अने सम्राट, मुनिराज विद्याविजय जी, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, सं० १९७९.

जगद्गुरु हीर, मुमुक्षु भव्यानन्द, विजयश्री ज्ञान मन्दिर, घाणेराव, मारवाड़, संवत् २००८.

जैन शासन दीपावली नो खास अंक, हीरविजय सूरि ऑर दी जैन्स ऐट दी कोर्ट ऑफ अकबर, चिमनलाल डाह्याभाई, हर्षचन्द भूराभाई, बनारस सिटी, संवत् २४३८.

खजुराहो की कला और जैनाचार्यों की समन्वयात्मक एवं सहिष्णु दृष्टि

खजुराहो की मन्दिर एवं मूर्तिकला को जैनों का प्रदेय क्या है? इस चर्चा के पूर्व हमें उस युग की परिस्थितियों का आकलन कर लेना होगा। खजुराहो के मन्दिरों का निर्माणकाल ईस्वी सन् की नवीं शती के उत्तरार्ध से बारहवीं शती के पूर्वार्ध के मध्य है। यह कालावधि एक ओर जैन साहित्य और कला के विकास का स्वर्णयुग है किन्तु दूसरी ओर यह जैनों के अस्तित्व के लिए संकट का काल भी है।

गुप्तकाल के प्रारम्भ से प्रवृत्तिमार्गी ब्राह्मण परम्परा का पुन: अभ्युदय हो रहा था। जन-साधारण तप-त्याग प्रधान नीरस वैराग्यवादी परम्परा से विमुख हो रहा था, उसे एक ऐसे धर्म की तलाश थी जो उसकी मनो-दैहिक एषणाओं की पूर्ति के साथ मुक्ति का कोई मार्ग प्रशस्त कर सके। मनुष्य की इसी आकांक्षा की पूर्ति के लिए हिन्दूधर्म में वैष्णव, शैव, शाक्त और कौल सम्प्रदायों का तथा बौद्ध धर्म में वज्रयान सम्प्रदाय का उदय हुआ। इन्होंने तप-त्याग प्रधान वैराग्यवादी प्रवृत्तियों को नकारा और फलत: जन-साधरण के आकर्षण के केन्द्र बने। निवृत्तिमार्गी श्रमण परम्पराओं के लिए अब अस्तित्व का संकट उपस्थित हो गया था। उनके लिए दो ही विकल्प शेष थे या तो वे तप-त्याग के कठोर निवृत्तिमार्गी आदर्शों से नीचे उतरकर युग की माँग के साथ कोई सामंजस्य स्थापित करें या फिर उनके विरोध में खड़े होकर अपने अस्तित्व को ही नामशेष होने दें।

बौद्धों का हीनयान सम्प्रदाय, जैनों का यापनीय सम्प्रदाय, आजीवक आदि दूसरे कुछ अन्य श्रमण सम्प्रदाय अपने कठोर निवृत्तिमार्गी आदर्शों से समझौता न करने के कारण नामशेष हो गये। बौद्धों का दूसरा वर्ग जो महायान के रास्ते यात्रा करता हुआ वज्रयान के रूप में विकसित हुआ था, यद्यपि युगीन परिस्थितियों से समझौता और समन्वय कर रहा था, किन्तु वह युग के प्रवाह के साथ इतना बह गया कि वह वाम मार्ग में और उसमें उपास्य भेद के अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं रह गया था। इस कारण एक ओर उसने अपनी स्वतन्त्र पहचान खो दी तथा दूसरी ओर वासना की पूर्ति के पंक में आकण्ठ डूब जाने से जन-साधारण की श्रद्धा से भी वंचित हो गया और अन्तत: अपना अस्तित्व नहीं बचा सका।

जैनाचार्यों ने इन परिस्थितियों में बुद्धिमत्ता से काम लिया, उन्होंने युगीन परिस्थितियों से एक ऐसा सामंजस्य स्थापित किया, जिसके कारण उनकी स्वतन्त्र पहचान भी बनी रही और भारतीय संस्कृति की उस युग की मुख्य धारा से उनका विरोध भी नहीं रहा। उन्होंने अपने वीतरागता एवं निवृत्ति के आदर्श को सुरक्षित रखते हुए भी हिन्दू देव मण्डल के अनेक देवी-देवताओं को, उनकी उपासना पद्धति और कर्मकाण्ड को, यहाँ तक कि तन्त्र को भी अपनी परम्परा के अनुरूप रूपान्तरित करके स्वीकृत कर लिया। मात्र यही नहीं हिन्दू समाज व्यवस्था के वर्णाश्रम सिद्धान्त और उनकी संस्कार पद्धति का भी जैनीकरण करके उन्हें आत्मसात् कर लिया। साथ ही अपनी ओर से सहिष्णुता और सद्भाव का परिचय देकर अपने को नामशेष होने से बचा लिया। हम प्रस्तुत आलेख में खजुराहो के मन्दिर एवं मूर्तिकला के प्रकाश में इन्हीं तथ्यों को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

खजुराहो के हिन्दू और जैन परम्परा के मन्दिरों का निर्माण समकालीन है, यह इस तथ्य का द्योतक है कि दोनों परम्पराओं में किसी सीमा तक सद्भाव और सह-अस्तित्व की भावना थी। किन्तु जैन मन्दिर समूह का हिन्दू मन्दिर समूह से पर्याप्त दूरी पर होना, इस तथ्य का सूचक है कि जैन मन्दिरों के लिए स्थल-चयन में जैनाचार्यों ने बुद्धिमत्ता और दूर-दृष्टि का परिचय दिया ताकि संघर्ष की स्थिति को टाला जा सके। ज्ञातव्य है कि खजुराहो का जैन मन्दिर समूह हिन्दू मन्दिर समूह से लगभग २ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह सत्य है कि मन्दिर निर्माण में दोनों परम्पराओं में एक सात्विक प्रतिस्पर्धा की भावना भी रही तभी तो दोनों परम्पराओं में कला के उत्कृष्ट नमूने साकार हो सके किन्तु जैनाचार्य इस सम्बन्ध में सजग थे कि संघर्ष का कोई अवसर नहीं दिया जाये क्योंकि जहाँ हिन्दू मन्दिरों का निर्माण राज्याश्रय से हो रहा था, वहाँ जैन मन्दिरों का निर्माण वणिक् वर्ग कर रहा था। अत: इतनी सजगता आवश्यक थी कि राजकीय कोष एवं बहुजन समाज के संघर्ष के अवसर अल्पतम हों और यह तभी सम्भव था जब दोनों के निर्माणस्थल पर्याप्त दूरी पर स्थित हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिर एवं मूर्तिकला की दृष्टि से दोनों परम्पराओं के मन्दिरों में पर्याप्त समानता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जैनों ने अपनी परम्परा के वैशिष्ट्य की पूर्ण उपेक्षा की है। समन्वयशीलता के प्रयत्नों के बावजूद उन्होंने अपने वैशिष्ट्य और अस्मिता को खोया नहीं है। खजुराहो के मन्दिर जिस काल में निर्मित हुए तब वाममार्ग और तन्त्र का पूरा प्रभाव था। यही कारण है कि खजुराहो के मन्दिरों में कामुक अंकन पूरी स्वतन्त्रता के साथ प्रदर्शित किये गये, प्राकृतिक और अप्राकृतिक मैथुन के अनेक दृश्य खजुराहो के मन्दिरों में उत्कीर्ण हैं। यद्यपि जैन मन्दिरों की बाह्य भित्तियों पर भी ऐसे कुछ अंकन हैं किन्तु उनकी मात्रा हिन्दू मन्दिरों की अपेक्षा अत्यल्प है। इसका अर्थ है कि जैनधर्मानुयायी इस सम्बन्ध में पर्याप्त सजग रहे होंगे कि कामवासना का यह उद्दाम अंकन उनके निवृत्तिमार्गी दृष्टिकोण के साथ संगति नहीं रखता है। इसलिए उन्होंने ऐसे दृश्यों के अंकन की खुली छूट नहीं दी। खजुराहो के जैन मन्दिरों में कामुकता के अश्लील अंकन के दो-चार फलक मिलते हैं। उनके सम्बन्ध में दो ही विकल्प हो सकते हैं या तो वे जैनाचार्यों की दृष्टि से ओझल रहे या फिर उन्हें उस तान्त्रिक मान्यता के आधार पर स्वीकार कर लिया गया कि ऐसे अंकनों के होने पर मन्दिर पर बिजली नहीं गिरती है और वह सुरक्षित रहता है। क्योंकि खजुराहो के अतिरिक्त दक्षिण के कुछ दिगम्बर जैन मन्दिरों में और राजस्थान के तारंगा और राणकपुर के श्वे. जैन मन्दिरों में ऐसे अंकन पाये जाते हैं। जहाँ तक काम सम्बन्धी अश्लील अंकनों का प्रश्न है इस सम्बन्ध में जैन आचार्यों ने युग की माँग के साथ सामंजस्य स्थापित करके उसे स्वीकृत प्रदान कर दी थी। जिन मन्दिर की बाह्य भित्तियों पर शालभंजिकाओं (अप्सराओं) के और व्यालों के उत्कीर्ण होने की सूचना जैनागम राजप्रश्नीय में भी उपलब्ध है[१]। इसका तात्पर्य है कि खजुराहो में उत्कीर्ण अप्सरा मूर्तियाँ जैन आगम सम्मत हैं। आचार्य जिनसेन ने इसके एक शताब्दी पूर्व ही रति और कामदेव का मूर्तियों के अंकन[२] एवं मन्दिर की बाह्य भित्तियों को आकर्षक बनाने की स्वीकृति दे दी थी। उन्होंने कहा था कि मन्दिर की बाह्य भित्तियों को वेश्या के समान होना चाहिए। जिस प्रकार वेश्या में लोगों को आकर्षित करने की सामर्थ्य होती है, उसी प्रकार मन्दिरों की बाह्य भित्तियों में भी जन-साधारण को अपनी ओर आकर्षित करने की सामर्थ्य होना चाहिये। जन-साधरण को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ऐसे अंकनों की स्वीकृति उनके युगबोध और सामंजस्य की दृष्टि का ही परिणाम था[३]। यद्यपि यह भी सत्य है कि अश्लील कामुक अंकनों के प्रति जैनों का रूख अनुदार ही रहा है। यही कारण है कि ऐसे कुछ फलकों को नष्ट करने का प्रयत्न भी किया गया है।

जैनाचार्यों की सहिष्णु और समन्वयवादी दृष्टि का दूसरा उदाहरण खजुराहो के जैन मन्दिरों में हिन्दू देवमण्डल के अनेक देवी-देवताओं का अंकन है। इन मन्दिरों में राम, कृष्ण, बलराम, विष्णु तथा सरस्वती, लक्ष्मी, काली, महाकाली, ज्वालामालिनी आदि देवियाँ, अष्ट दिक्पाल, नवग्रह आदि को प्रचुरता से उत्कीर्ण किया गया है। यद्यपि यह ज्ञातव्य है कि इनमें से अनेकों को खजुराहो के मन्दिरों के निर्माण के शताब्दियों पूर्व ही जैन देव मण्डल का अंग बना लिया गया था। राम, लक्ष्मण, कृष्ण, बलराम आदि वासुदेव और बलदेव के रूप में शलाका पुरुष तथा सरस्वती, काली, महाकाली आदि १६ विद्या-देवियों के रूप में अथवा जिनों की यक्षियों के रूप में मान्य हो चुकी थीं, इसी प्रकार नवग्रह, अष्टदिक्पाल, इन्द्र आदि भी जैनों के देव मण्डल में प्रतिष्ठित हो चुके थे और इनकी पूजा-की उपासना भी होने लगी थी। फिर भी जैनाचार्यों की विशिष्टता यह रही कि उन्होंने वीतराग की श्रेष्ठता और गरिमा को यथावत सुरक्षित रखा और इन्हें जिनशासन के सहायक देवी-देवता के रूप में ही स्वीकार किया।

खुजराहो के मन्दिर एवं मूर्तियों के सम्बन्ध में यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो मेरी जानकारी के अनुसार यहाँ के किसी भी हिन्दू मन्दिर में जिन प्रतिमा का कोई भी अंकन उपलब्ध नहीं होता है, जबकि जैन मन्दिरों में न केवल उन देवी-देवताओं का जो जैन देवमण्डल के सदस्य मान लिये गये हैं, अपितु इसके अतिरिक्त भी हिन्दू देवी-देवताओं के अंकन हैं-- यह जैनाचार्यों की उदार दृष्टि का परिचायक है। जबकि हिन्दू मन्दिरों में दशावतार के कुछ फलकों में युद्ध के अंकन के अतिरिक्त जैन और बौद्ध देव मण्डल अथवा जिन और बुद्ध के अंकन का अभाव किसी अन्य स्थिति का सूचक है। मैं विद्वानों का ध्यान इस ओर अवश्य आकर्षित कना चाहूँगा कि वे यह देखें कि यह समन्वय या सहिष्णुता की बात खजुराहो के मन्दिर और मूर्तिकला की दृष्टि से एक पक्षीय है या उभयपक्षीय है।

इसी प्रंसग में खजुराहो के हिन्दू मन्दिरों में दिगम्बर जैन श्रमणों का जो अंकन है वह भी पुनर्विचार की अपेक्षा रखता है। डॉ० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी ने 'भारती' वर्ष १९५९-६० के अंक ३ में अपने लेख "The Erotic Scenes of Khajuraho and their Probable explanation" में इस सम्बन्ध में भी एक प्रश्न उपस्थित किया है। खजुराहो जगदम्बी मन्दिर में एक दिगम्बर जैन श्रमण को दो कामुक स्त्रियों से घिरा हुआ दिखाया गया है। लक्ष्मण मन्दिर के दक्षिण भित्ति में दिगम्बर जैन श्रमण को पशुपाशक मुद्रा में एक स्त्री से सम्भोगरत बताया गया, मात्र यही नहीं उसकी पाद-पीठ पर ''श्री साधु नन्दिक्षपणक'' ऐसा लेख भी उत्कीर्ण है। इसी प्रकार जगदम्बी मन्दिर की दक्षिण भित्ति पर क्षपणक (दिगम्बर जैन मुनि) को उत्थिग-लिंग दिखाया गया है, उसके समक्ष खड़ा हुआ भागवत संन्यासी एक हाथ से उसका लिंग पकड़े हुए है, दूसरा हाथ मारने की मुद्रा में है, जबकि क्षपणक हाथ जोड़े हुए खड़ा है। प्रश्न यह है कि इस प्रकार के अन्य अंकनों का उद्देश्य क्या था ? डॉ० त्रिपाठी ने इसे जैन श्रमणों की विषय-लम्पटता और समाज में उनके प्रति आक्रोश की भावना माना है। उनके शब्दों में "The Penis erectus of the Kshapanaka is suggestive of his licentious character and lack of control over senses which appears to have been in the root of all these Conflicts and opposition" (Bharti, 1959-60 No. 3, Page 100)

किन्तु मैं यहाँ डॉ० त्रिपाठी के निष्कर्ष से सहमत नहीं हूँ। मेरी

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

दृष्टि में इसका उद्देश्य जैन श्रमणों की समाज में जो प्रतिष्ठा थी उसे नीचे गिराना था। प्रो० त्रिपाठी ने जैन श्रमणों की विष्य-लम्पटता के अपने निष्कर्ष की पुष्टि के लिए "प्रबोधचन्द्रोदय" का साक्ष्य भी प्रस्तुत किया जिसमें जैन क्षपणक (मुनि) के मुख से यह कहलवाया है—

दूर चरण प्रणामः कृतसत्कारं भोजनं च मिष्टम्।
ईर्ष्यामलं न कार्य ऋषिणां दारान् रमणमाणानाम्।।[४]

अर्थात्, ऋषियों की दूर से चरण वंदना करनी चाहिए, उन्हें सम्मान पूर्वक मिष्ट भोजन करवाना चाहिए और यदि वे स्त्री से रमण भी करें तो भी ईर्ष्या नहीं करना चाहिए।

प्रो० त्रिपाठी का यह प्रमाण इसलिए लचर हो जाता है कि यह भी विरोधी पक्ष ने ही प्रस्तुत किया है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का मुख्य उद्देश्य ही जैन-बौद्ध श्रमणों को पतित तथा कापलिक (कौल) मत की ओर आकर्षित होता दिखाना है। वस्तुतः ये समस्त प्रयास जैन श्रमणों की सामाजिक प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाने के निमित्त ही थे। यह सत्य है कि इस युग में जैन श्रमण अपने निवृत्तिमार्गी कठोर संयम और देह तितीक्षा के उच्च आदर्श से नीचे उतरे थे। संघ रक्षा के निमित्त वे वनवासी से चैत्यवासी (मठवासी) बने थे। तन्त्र के बढ़ते हुए प्रभाव से जन-साधारण जैनधर्म से विमुख न हो जाये -- इसलिए उन्होंने भी तन्त्र चिकित्सा एवं ललित कलाओं को अपनी परम्परा के अनुरूप ढाल कर स्वीकार कर लिया था। किन्तु वैयक्तिक अपवादों को छोड़कर, जो हर युग और हर सम्प्रदाय में रहे हैं, उन्होंने वाममार्गी आचार-विधि को कभी मान्यता नहीं दी। जैन श्रमण परम्परा वासनापूर्ति की स्वछन्दता के उस स्तर पर कभी नहीं उतरी, जैसा कि खजुराहो के मन्दिरों में उसे अंकित किया गया है। वस्तुतः इस प्रकार के अंकनों का कारण जैन श्रमणों का चारित्रिक पतन नहीं है, अपितु धार्मिक विद्वेष और असहिष्णुता की भावना है। स्वयं प्रो० त्रिपाठी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखते हैं -

The existence of these temples of different faiths at one site has generally,upto now, been taken indicative of an atmosphere of religious toleration and amity enabling peaceful co-existence. This long established notion in the light of proposed interpretation of erotic secnes requires modification. There are even certain sculptures on the temples of khajuraho, which clearly reveal the existence of religious rivalary and conflict at the time (lbid, p. 99-100)

किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार के विद्वेष पूर्ण अंकन जैन मन्दिरों में हिन्दू संन्यासियों के प्रति भी हैं? जहाँ तक मेरा ज्ञान है खजुराहो के जैन मन्दिरों में एक अपवाद को छोड़कर प्रायः ऐसे अंकनों का अभाव है और यदि ऐसा है तो वह जैनाचार्यों की उदार और सहिष्णु दृष्टि का ही परिचायक है। यद्यपि यह सत्य है कि इसी युग के कतिपय जैनाचार्यों ने धर्म-परीक्षा जैसे ग्रन्थों के माध्यम से सपत्नीक सराग देवों पर व्यंग्य प्रस्तुत किये हैं और देव मूढ़ता, गुरू मूढ़ता और धर्म मूढ़ता के रूप में हिन्दू परम्परा में प्रचलित अन्धविश्वासों की समीक्षा भी की है,[५] किन्तु, इसके बावजूद खजुराहो के जैन मन्दिरों में हिन्दू देवमण्डल के अनेक देवों का सपत्नीक अंकन क्या जैनाचार्यों की उदार भावना का परिचायक नहीं माना जा सकता?

वस्तुतः सामन्यतया जैन श्रमण न तो आचार में इतने पतित थे जैसा कि उन्हें अंकित किया गया है और न वे असहिष्णु ही थे। यदि वे चारित्रिक दृष्टि से इतने पतित होते तो फिर वासवचन्द्र महाराजा धंग की दृष्टि में सम्मानित कैसे होते? खजुराहो के अभिलेख उनके जन-समाज पर व्यापक प्रभाव को सूचित करते हैं। कोई भी विषय लम्पट श्रमण जन-साधारण की श्रद्धा का केन्द्र नहीं बन सकता है। यदि जैन श्रमण भी विषय-लम्पटता में वज्रयानी बौद्ध श्रमणों एवं कापलिकों का अनुसरण करते तो कालान्तर में नाम शेष हो जाते। जैन श्रमणों पर समाज का पूरा नियन्त्रण रहता था। दुश्चरित्र श्रमणों को संघ से बहिष्कृत करने का विधान था, जो वर्तमान में भी यथावत् है। खजुराहो के जगदम्बी आदि मन्दिरों में जैन श्रमणों का जो चित्रण है वह मात्र ईर्ष्यावश उनके चरित्र-हनन का प्रयास था। यद्यपि हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ये अंकन सामान्य हिन्दू परम्परा के जैनों के प्रति अनुदार दृष्टिकोण के परिचायक नहीं हैं। क्योंकि सामान्य हिन्दू समाज जैनों के प्रति सदैव ही उदार और सहिष्णु रहा है। यदि सामान्य हिन्दू समाज जैनों के प्रति अनुदार होता तो उनका अस्तित्व समाप्त हो गया होता। यह अनुदार दृष्टि केवल कौलों और कापलिकों की ही थी, क्योंकि इनके लिये जैन श्रमणों की चरित्रनिष्ठा ईर्ष्या का विषय थी। ऐतिहासिक आधारों पर भी कौलों और कापलिकों के असहिष्णु और अनुदार होने के अनेक प्रमाण हमें उपलब्ध होते हैं। इन दोनों परम्पराओं का प्रभाव खजुराहो की कला पर देखा जाता है। जैन श्रमणों के सन्दर्भ में ये अंकन इसी प्रभाव के परिचायक हैं। सामान्य हिन्दू परम्परा और जैन परम्परा में सम्बन्ध मधुर और सौहार्दपूर्ण ही थे।

पुनः जगदम्बी मन्दिर के उस फलक की जिसमें क्षपणक अपने विरोधी के आक्रोश की स्थिति में भी हाथ जोड़े हुए हैं, व्याख्या जैन श्रमण की सहनशीलता और सहिष्णुता के रूप में भी की जा सकती है। अनेकांत और अहिंसा के परिवेश में पले जैन श्रमणों के लिए समन्वयशीलता और सहिष्णुता के संस्कार स्वाभाविक हैं और इनका प्रभाव खजुराहो के जैन मन्दिरों की कला पर स्पष्ट रूप देखा जाता है।

सन्दर्भ

१. दारचेडीओ य सालभंजियाओ य बालरूवए य लोमहत्थेणं पमज्जई - राजप्रश्नीय (मधुकरमुनि), २००
२. हरिवंशपुराण, २९/२-५
३. (अ) आदिपुराण, ६/१८१
(ब) खजुराहो के जैन मन्दिरों की मूर्तिकला, रत्नेश वर्मा, पृ. ५६ से ६२
४. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ३/६
५. (अ) पुरुषार्थसिद्धयुपाय, २६
(ब) धूर्ताख्यान, हरिभद्र
(स) यशस्तिलकचम्पू (हन्दिकी), पृ. २४९-२५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org